जितिया व्रत

परंपरा, प्रसार और प्रासंगिकता



अनमोल भारती

ॐ

जितिया व्रत

परंपरा,प्रसार और प्रासंगिकता

अनमोल भारती
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
देव संस्कृति विश्वविद्यालय,हरिद्वार

CENTRE FOR
HUMAN SCIENCES
rishihood university

पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन

प्रो. संपदानंद मिश्रा

निर्देशक,मानव विज्ञान केंद्र,ऋषिहुड विश्वविद्यालय

संकलन एवं प्रस्तुति

अनमोल भारती

स्नातक,इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग

द्वितीय वर्ष

देव संस्कृति विश्वविद्यालय,हरिद्वार

मार्गदर्शक

नीलाभ कुमार शर्मा (Assistant Director (Research & Administration))

अनुश्री.एस.एल. (Assistant Professor)

विशेष आभार

डॉ. मोना (विभागाध्यक्ष,इतिहास एवं भारतीय संस्कृति

देव संस्कृति विश्वविद्यालय)

धन्यवाद

ऋषिहुड विश्वविद्यालय,हरियाणा

देव संस्कृति विश्वविद्यालय,उतराखंड

प्रकाशक

मानव विज्ञान केंद्र(CHS)

ऋषिहुड विश्वविद्यालय,सोनीपत

हरियाणा-131021

www.Rishihood.edu.in/chs

Copyright Page

शीर्षक: जितिया व्रत : परंपरा,प्रसार और प्रासंगिकता

प्रस्तुतकर्ता: अनमोल भारती

संस्थागत संबद्धता: देव संस्कृति विश्वविद्यालय,हरिद्वार। ऋषिहुड विश्वविद्यालय,सोनीपत

प्रथम प्रकाशन: जुलाई,2026

कृति की विशेषताएं

यह कृति जितिया व्रत का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय दृष्टिकोण से समग्र एवं शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत करती है। इसमें व्रत की उत्पत्ति, परंपरा, प्रसार, लोककथाओं, मातृत्व, महिला सशक्तिकरण, भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, पर्यावरणीय प्रासंगिकता तथा सतत विकास के संदर्भ में बहुआयामी विश्लेषण किया गया है। यह पुस्तक भारतीय ज्ञान परंपरा और समकालीन अकादमिक विमर्श के मध्य एक सेतु स्थापित करने का प्रयास करते हुए विद्यार्थियों, शोधार्थियों, अध्यापकों तथा भारतीय संस्कृति के अध्येताओं के लिए एक उपयोगी संदर्भ सामग्री के रूप में तैयार की गई है।

आभार पृष्ठ

ज्ञान की प्रत्येक सार्थक यात्रा अनेक प्रेरणाओं, आशीर्वादों, मार्गदर्शनों और सहयोगों से पूर्ण होती है। प्रस्तुत ई-पुस्तक ***"जितिया व्रत: परंपरा, प्रसार और प्रासंगिकता"*** भी ऐसे ही सामूहिक सहयोग, विश्वास और प्रेरणा का परिणाम है। इस कृति के लेखन, अध्ययन और संकलन की प्रक्रिया में अनेक व्यक्तियों एवं संस्थानों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त हुआ, जिनके प्रति मैं हृदय से अपनी कृतज्ञता एवं सम्मान व्यक्त करता हूँ।

सर्वप्रथम, मैं अपने **पूज्य माता-पिता** के प्रति अपनी विनम्र कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनके निस्वार्थ प्रेम, त्याग, संस्कार, धैर्य एवं अटूट विश्वास ने मुझे प्रत्येक परिस्थिति में आगे बढ़ने का साहस प्रदान किया। उनके आशीर्वाद और नैतिक मूल्यों ने मेरे व्यक्तित्व तथा शैक्षणिक जीवन की सुदृढ़ आधारशिला रखी। मैं अपने **प्रिय भाइयों** का भी हृदय से आभारी हूँ, जिनके स्नेह, प्रोत्साहन एवं निरंतर सहयोग ने इस कृति को पूर्ण करने की यात्रा को सरल और प्रेरणादायी बनाया।

मैं इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय (DSVV), हरिद्वार की विभागाध्यक्ष (Head of the Department) आदरणीया **डॉ. मोना** के प्रति अपनी विशेष कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उनके विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन, दूरदर्शी दृष्टिकोण, निरंतर प्रोत्साहन तथा बहुमूल्य सुझावों ने इस कृति को अधिक परिपक्व, शोधपरक एवं गुणवत्तापूर्ण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका स्नेह, विश्वास एवं शैक्षणिक सहयोग मेरे लिए सदैव प्रेरणास्रोत रहा है।

मैं सेंटर फॉर ह्यूमन साइंसेज़ (Centre for Human Sciences), ऋषिहुड विश्वविद्यालय, सोनीपत के **निर्देशक प्रो. संपदानंद मिश्रा** के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उनके दूरदर्शी शैक्षणिक दृष्टिकोण, भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति समर्पण तथा नवाचारी चिंतन ने मुझे अध्ययन और अनुसंधान के प्रति व्यापक एवं समग्र दृष्टि विकसित करने की प्रेरणा दी। उनके प्रोत्साहन एवं स्नेहपूर्ण सहयोग ने इस कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मैं अपने मार्गदर्शकों, **श्री नीलाभ कुमार शर्मा** (Assistant Director (Research & Administration)) एवं **सुश्री अनुश्री.एस. एल.** (Assistant Professor), के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उनके विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन, शोधपरक दृष्टिकोण, रचनात्मक सुझावों तथा निरंतर प्रोत्साहन ने इस कृति को अधिक परिष्कृत एवं अकादमिक स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके सहयोग एवं प्रेरणा ने मेरी शोध-दृष्टि को व्यापक बनाने में अमूल्य भूमिका निभाई।

मैं आदरणीय **विष्णु एम, दिवाकर शर्मा, दीपांकर भट्टाचार्य, सिद्धार्थ कुमार नायक,उपासिका घोष तथा तनुश्री रांजणगांवकर** के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। समय-समय पर प्राप्त उनके शैक्षणिक मार्गदर्शन, बहुमूल्य सुझावों, प्रेरणा एवं सहयोग ने इस कृति के निर्माण को समृद्ध और सार्थक बनाया। उनका स्नेह एवं प्रोत्साहन मेरी शैक्षणिक यात्रा के लिए सदैव प्रेरणास्रोत रहेगा।

मैं अपने प्रिय मित्रों **एन. पाण्डेय, सौभाग्य, श्रद्धा, शिखा, देवांग तथा घनश्याम** के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। अध्ययन एवं लेखन की इस यात्रा के दौरान उनके सार्थक विचार-विमर्श, रचनात्मक सुझाव, निरंतर प्रोत्साहन, सहयोगपूर्ण दृष्टिकोण तथा नैतिक समर्थन ने इस कृति के वैचारिक परिष्कार एवं सफल संपादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके सहयोग, विश्वास और आत्मीयता ने प्रत्येक चरण पर मुझे नई ऊर्जा एवं प्रेरणा प्रदान की।

अंततः, मैं **देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार** तथा **ऋषिहुड विश्वविद्यालय, सोनीपत** के प्रति अपना सादर आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने उत्कृष्ट शैक्षणिक वातावरण, ज्ञान-संसाधनों एवं अनुसंधान के अवसरों के माध्यम से मेरी बौद्धिक एवं शोध-यात्रा को समृद्ध किया।

अंत में, मैं उन सभी व्यक्तियों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिनका नाम यहाँ उल्लिखित नहीं हो सका, किन्तु जिनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग इस कृति के निर्माण में अमूल्य रहा। मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक भारतीय लोकसंस्कृति, मातृत्व अध्ययन तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के क्षेत्र में अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए एक उपयोगी संदर्भ सिद्ध होगी।

—अनमोल भारती

विषय सूची

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में लोकपर्व और व्रत केवल धार्मिक आस्था एवं अनुष्ठानिक परंपराओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे समाज के नैतिक मूल्यों, सांस्कृतिक निरंतरता, पारिवारिक उत्तरदायित्व, सामुदायिक जीवन तथा प्रकृति के साथ संतुलित सह-अस्तित्व की जीवन-दृष्टि को भी अभिव्यक्त करते हैं। भारतीय लोकजीवन में विकसित इन परंपराओं ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी सामाजिक अनुभव, व्यवहारिक ज्ञान तथा जीवन-मूल्यों का संरक्षण और संवहन किया है। इसी कारण भारतीय लोकव्रतों का अध्ययन केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, दार्शनिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक एवं पर्यावरणीय संदर्भों में भी अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

इन्हीं लोकपरंपराओं में **जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत** भारतीय मातृत्व, त्याग, आत्मसंयम, करुणा और संतान के प्रति अटूट समर्पण का एक विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतीक है। यह व्रत मुख्यतः बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाया जाता है। सामान्यतः इसे संतान की दीर्घायु एवं मंगलकामना के लिए किया जाने वाला व्रत माना जाता है, किंतु इसके अंतर्निहित आयाम इससे कहीं अधिक व्यापक हैं। इस लोकपर्व में भारतीय ज्ञान परंपरा, मातृत्व-दर्शन, नैतिक उत्तरदायित्व, सामाजिक सहयोग, लोकविश्वास तथा प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। इसलिए जितिया व्रत केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि भारतीय लोकसंस्कृति में निहित जीवन-दर्शन की एक सशक्त अभिव्यक्ति है।

यद्यपि जितिया व्रत पर उपलब्ध अधिकांश साहित्य में इसके धार्मिक, पौराणिक एवं अनुष्ठानिक पक्षों का विस्तृत वर्णन मिलता है, तथापि इसके दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय आयामों पर अपेक्षाकृत कम विमर्श हुआ है। विशेष रूप से बदलती पारिवारिक संरचना, मातृत्व की परिवर्तित अवधारणा, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक उत्तरदायित्व, पर्यावरणीय संकट तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में इस लोकपर्व की समकालीन प्रासंगिकता को समग्र रूप से समझने की आवश्यकता अनुभव की जाती है। वर्तमान समय में जब समाज तीव्र सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है, तब ऐसे लोकपर्वों का पुनर्पाठ और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज और प्रकृति के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में जितिया व्रत का परिचय, ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधार, भौगोलिक प्रसार तथा अनुष्ठानिक स्वरूप का विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय में भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में मातृत्व-दर्शन, दार्शनिक अवधारणाओं तथा जितिया व्रत में निहित वैचारिक एवं नैतिक आधारों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अध्याय में समकालीन

सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में मातृत्व–संतान संबंधों, बदलती पारिवारिक संरचना तथा वर्तमान सामाजिक चुनौतियों का अध्ययन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों एवं भारतीय नैतिक चिंतन के आलोक में जितिया व्रत के मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक आयामों का विश्लेषण किया गया है। अंतिम अध्याय में जितिया व्रत के पर्यावरणीय पक्ष, पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान, स्थानीय जैव विविधता तथा सतत विकास के संदर्भ में इसकी समकालीन प्रासंगिकता का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

यह पुस्तक जितिया व्रत को केवल संतान की दीर्घायु के लिए किए जाने वाले धार्मिक अनुष्ठान के रूप में नहीं देखती, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन, मातृत्व, नैतिक उत्तरदायित्व, सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक निरंतरता तथा पर्यावरणीय चेतना के बहुआयामी प्रतीक के रूप में समझने का प्रयास करती है। आशा है कि यह अध्ययन शोधार्थियों, अध्येताओं, शिक्षकों तथा भारतीय संस्कृति और लोकपरंपराओं में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा तथा जितिया व्रत के व्यापक दार्शनिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को समझने में एक सार्थक योगदान प्रदान करेगा।

-अनमोल भारती

अध्याय 1

जितिया व्रत का परिचय एवं अनुष्ठानिक परंपरा



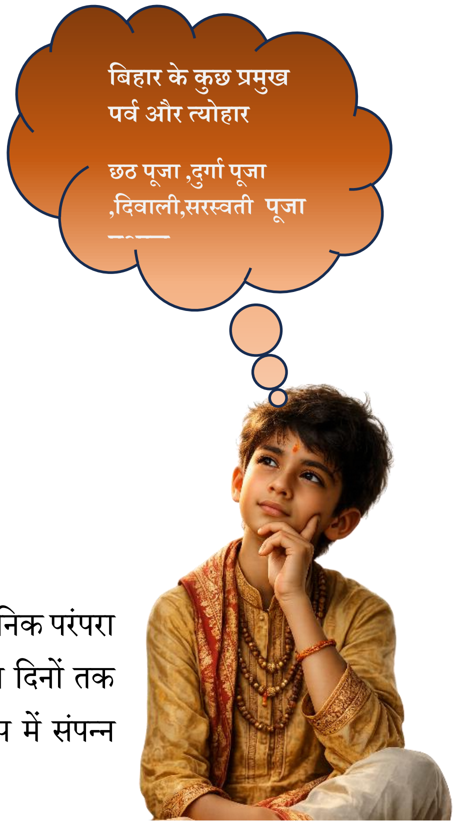
"जहाँ मातृत्व केवल जन्म का संबंध नहीं, बल्कि त्याग, करुणा और संरक्षण का आजीवन संकल्प बन जाता है, वहीं से जितिया व्रत की सांस्कृतिक यात्रा प्रारंभ होती है।"

1.1 जितिया व्रत का संक्षिप्त परिचय:

जितिया व्रत जिसे जीवित्पुत्रिका व्रत का नाम से जाना जात हैं,जो भारतीय लोकजीवन में मातृत्व, आस्था और सांस्कृतिक मूल्यों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पर्व है। यह मुख्यतः **बिहार,झारखंड,पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों** में माताओं द्वारा अपनी संतान की दीर्घायु, स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं समृद्धि की कामना के लिए श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ मनाया जाता है।

आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की **सप्तमी,अष्टमी** और **नवमी** तक चलने वाला यह त्रिदिवसीय अनुष्ठान भारतीय लोकपरंपरा में मातृत्व की तपस्या,धैर्य और समर्पण का अनुपम उदाहरण माना जाता है। अष्टमी के दिन रखा जाने वाला निर्जला उपवास इस व्रत का सबसे कठिन और प्रमुख अंग है, जो आत्मसंयम, संकल्प और निःस्वार्थ प्रेम का प्रतीक है।

यद्यपि सामान्यतः इस व्रत को संतान की रक्षा और दीर्घायु के लिए किया जाने वाला धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है, किन्तु इसका महत्व केवल पूजा-पद्धति तक सीमित नहीं है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मातृत्व-दर्शन,करुणा,आत्मसंयम,नैतिक उत्तरदायित्व,सामुदायिक सहयोग तथा सांस्कृतिक निरंतरता का भी सशक्त प्रतीक है। इस व्रत के माध्यम से परिवार और समाज में प्रेम,संरक्षण, अनुशासन,सहनशीलता तथा लोकमंगल जैसे जीवन-मूल्यों का संचार होता है। यही कारण है कि जितिया व्रत केवल एक लोकपर्व नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की उस जीवंत परंपरा का प्रतिनिधि है जो धार्मिक आस्था के साथ-साथ नैतिक चेतना, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक पहचान को भी सुदृढ़ करती है।



1.2 अनुष्ठानिक परंपरा और विधि-विधान:

जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत भारतीय लोकजीवन की एक समृद्ध अनुष्ठानिक परंपरा है, जो केवल एक दिन के उपवास तक सीमित नहीं रहती, बल्कि तीन दिनों तक चलने वाली एक सुव्यवस्थित धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में संपन्न होती है।

भारतीय संस्कृति में अधिकांश व्रत एवं पर्व **हिन्दू पंचांग** के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। हिन्दू पंचांग केवल तिथियों की गणना का माध्यम नहीं है, बल्कि यह भारतीय जीवन-दर्शन,ऋतुचक्र, खगोलीय गणना तथा धार्मिक परंपराओं का समन्वित स्वरूप है। जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत भी हिन्दू पंचांग के अनुसार **आश्विन मास के कृष्ण पक्ष** में मनाया जाता है। हिन्दू पंचांग के अनुसार आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की **सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी** तिथियों

में संपन्न होने वाली एक क्रमबद्ध अनुष्ठानिक परंपरा है। इस व्रत का प्रत्येक चरण एक विशिष्ट धार्मिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक उद्देश्य से जुड़ा हुआ है।

हिन्दू पंचांग के अनुसार इन तीनों तिथियों की अनुष्ठानिक परंपरा एवं उनके सांस्कृतिक महत्व को निम्नलिखित विवरण के माध्यम से समझा जा सकता है।

i.आश्विन कृष्ण सप्तमी (नहाय-खाय)



चित्र सं.1.1

जितिया व्रत की शुरुआत सप्तमी तिथि के **'नहाय-खाय'** से होती है। इस दिन व्रती महिलाएँ प्रातः स्नान करके **शरीर और मन की शुद्धि** करती हैं तथा घर, आँगन और पूजा-स्थल की विशेष रूप से साफ-सफाई एवं पवित्रीकरण करती हैं। लोकमान्यता के अनुसार किसी भी पवित्र अनुष्ठान की सफलता के लिए बाह्य एवं आंतरिक दोनों प्रकार की शुद्धि आवश्यक मानी जाती है। इसलिए नहाय-खाय केवल भोजन ग्रहण करने का दिन नहीं, बल्कि पूरे व्रत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक तैयारी का प्रारंभिक चरण है।

ii. आश्विन कृष्ण अष्टमी (सरगही एवं निर्जला उपवास)



चित्र सं. 1.2

आश्विन कृष्ण अष्टमी जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत का सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रधान दिवस माना जाता है। इस दिन की शुरुआत प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में होती है। निर्जला उपवास प्रारंभ होने से पूर्व व्रती महिलाएँ पारंपरिक रीति-रिवाजों के अनुसार **मड़ुआ (रागी)** से बने व्यंजन तथा स्थानीय मौसमी खाद्य पदार्थ-जैसे झिंगनी(तुरई),ओल(सूरन),नोनी,तथा अन्य पारंपरिक सब्जियाँ तैयार करती हैं। बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में इस प्रातःकालीन भोजन को **'सरगही'** कहा जाता है। इस अवसर पर माताएँ स्वयं भोजन ग्रहण करने के साथ-साथ अपनी संतानों को भी स्नेहपूर्वक भोजन कराती हैं। लोकमान्यता के अनुसार सरगही केवल लंबे निर्जला उपवास के लिए शारीरिक तैयारी का माध्यम नहीं है, बल्कि मातृत्व के स्नेह, पारिवारिक आत्मीयता तथा संतान के प्रति उत्तरदायित्व की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी है। सरगही के उपरांत व्रती महिलाएँ संतान की दीर्घायु, उत्तम स्वास्थ्य, सुख-समृद्धि एवं मंगल की कामना करते हुए निर्जला उपवास का संकल्प लेती हैं। इसके पश्चात अन्न एवं जल का पूर्ण त्याग कर पूरे दिन कठोर उपवास रखा जाता है। इस अवधि में जीमूतवाहन की पूजा-अर्चना, व्रत-कथा का श्रवण, लोकगीतों का गायन तथा सामूहिक धार्मिक अनुष्ठान संपन्न किए जाते हैं। अनेक स्थानों पर महिलाएँ

सामूहिक रूप से एकत्र होकर पूजा करती हैं, पारंपरिक गीत गाती हैं तथा एक-दूसरे के साथ धार्मिक एवं सांस्कृतिक अनुभव साझा करती हैं। यह सामूहिक सहभागिता व्रत को केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित नहीं रहने देती, बल्कि सामाजिक एकता, पारिवारिक सहयोग तथा लोकसंस्कृति के संरक्षण का भी सशक्त माध्यम बनाती है।

iii.आश्विन कृष्ण नवमी (पारण एवं व्रत समापन)



चित्र सं. 1.3

आश्विन कृष्ण नवमी के दिन जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत का समापन **पारण** के साथ होता है। लगभग चौबीस घंटे से अधिक समय तक चले निर्जला उपवास के पश्चात व्रती महिलाएँ प्रातः स्नान कर विधिपूर्वक जीमूतवाहन,भगवान सूर्य तथा कुलदेवता का स्मरण करती हैं और पूजा-अर्चना सम्पन्न करती हैं। इसके उपरांत व्रत के दौरान धारण किए गए **जितिया (जिउतिया) धागे** की पूजा की जाती है। अनेक क्षेत्रों में यह धागा मातृत्व, संतान की रक्षा तथा ईश्वर से प्राप्त संरक्षण का प्रतीक माना जाता है। पूजा के उपरांत महिलाएँ इस धागे को श्रद्धापूर्वक सुरक्षित रखती हैं या स्थानीय परंपरा के अनुसार उसका विसर्जन अथवा परिवर्तन करती हैं।

पारण के अवसर पर पारंपरिक रूप से विविध प्रकार के व्यंजन एवं मौसमी सब्जियाँ तैयार की जाती हैं। बिहार, झारखंड,पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में इस दिन **ओल(सूरन),झिंगनी(तुरई),नोनी साग,पोई साग,अरबी,कद्दू,सेम,कुशीया कैराव,दही तथा अन्य स्थानीय मौसमी सब्जियाँ** का विशेष महत्व माना जाता है। कई परिवारों में विभिन्न प्रकार की सब्जियों को एक साथ बनाकर भोजन करने की भी परंपरा है, जिसे प्रकृति द्वारा प्रदत्त विविध कृषि उपज के प्रति कृतज्ञता तथा संतुलित आहार का प्रतीक माना जाता है। इसके साथ दाल,भात,दही, चूड़ा तथा अन्य पारंपरिक व्यंजन भी स्थानीय रीति-रिवाजों के अनुसार बनाए जाते हैं।

💡 **रोचक तथ्य:**

जितिया व्रत की भाँति भारत में अहोई अष्टमी, संतान सप्तमी, पुत्रदा एकादशी और षष्ठी पूजा जैसे अनेक व्रत भी संतान के कल्याण एवं दीर्घायु की कामना के लिए मनाए जाते हैं।

अध्याय 2

जितिया व्रत की कथात्मक विरासत



परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः।परोपकाराय वहन्ति नद्यः।।
परोपकाराय दुहन्ति गावः।परोपकाराय सतां विभूतयः।।

श्श्लोक का अभिप्राय है कि सज्जन व्यक्तियों की समस्त विभूतियाँ-जैसे ज्ञान, शक्ति, धन, प्रतिष्ठा, सामर्थ्य और जीवन-केवल व्यक्तिगत हित के लिए नहीं, बल्कि समाज, मानवता और लोककल्याण के लिए होते हैं। जिस प्रकार वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, नदियाँ अपना जल स्वयं उपयोग नहीं करतीं और गौ स्वयं अपने दूध का उपभोग नहीं करती, उसी प्रकार श्रेष्ठ व्यक्तियों का जीवन भी परोपकार, करुणा और सामाजिक उत्तरदायित्व को समर्पित होता है।

2.1 भारतीय संस्कृति में कथा-परंपरा की भूमिका:

भारतीय संस्कृति में **कथा-परंपरा** केवल धार्मिक आख्यानों के श्रवण का माध्यम नहीं रही है,बल्कि ज्ञान, नैतिकता,दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण की एक सशक्त सामाजिक व्यवस्था रही है। वैदिक काल से लेकर पुराणों,महाकाव्यों, जातक कथाओं तथा लोककथाओं तक भारतीय समाज ने कथाओं के माध्यम से धर्म,कर्तव्य,करुणा,त्याग,सत्य,परोपकार और लोकमंगल जैसे जीवन-मूल्यों का प्रसार किया। उस समय जब लिखित ज्ञान सीमित था और समाज का अधिकांश भाग मौखिक परंपराओं पर निर्भर था, तब कथा-श्रवण शिक्षा, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक निरंतरता का प्रमुख माध्यम बन गया। यही कारण है कि भारतीय लोकपर्वों एवं व्रतों में कथा-श्रवण को अनुष्ठान का अनिवार्य अंग माना गया, क्योंकि कथा केवल धार्मिक विश्वास को ही नहीं, बल्कि उसके पीछे निहित नैतिक एवं दार्शनिक संदेश को भी समाज तक पहुँचाती थी।

इसी परंपरा के अंतर्गत **जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत** के साथ भी विभिन्न कथाएँ प्रचलित हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में **महाभारत से संबंधित जीवित्पुत्रिका प्रसंग**, **जीमूतवाहन की त्याग एवं लोकमंगल पर आधारित कथा** तथा **चील-सियारिन (चिल्हो-सियार) की लोककथा** का श्रवण किया जाता है। यद्यपि इन कथाओं की घटनाएँ और पात्र भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु सभी का मूल संदेश एक ही है-**संतान की रक्षा, मातृत्व, करुणा, त्याग, आत्मसंयम, सत्यनिष्ठा तथा नैतिक उत्तरदायित्व।** यही कारण है कि जितिया व्रत की कथा-परंपरा केवल धार्मिक विश्वास का आधार नहीं, बल्कि भारतीय लोकजीवन में मातृत्व और जीवन-मूल्यों की निरंतरता को बनाए रखने का एक सशक्त सांस्कृतिक माध्यम भी है। प्रस्तुत अध्याय में इन प्रमुख कथाओं का क्रमशः विवेचन किया जा रहा है, जिससे जितिया व्रत की बहुआयामी सांस्कृतिक, नैतिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि को समग्र रूप से समझा जा सके।

2.2 जीमूतवाहन की कथा:

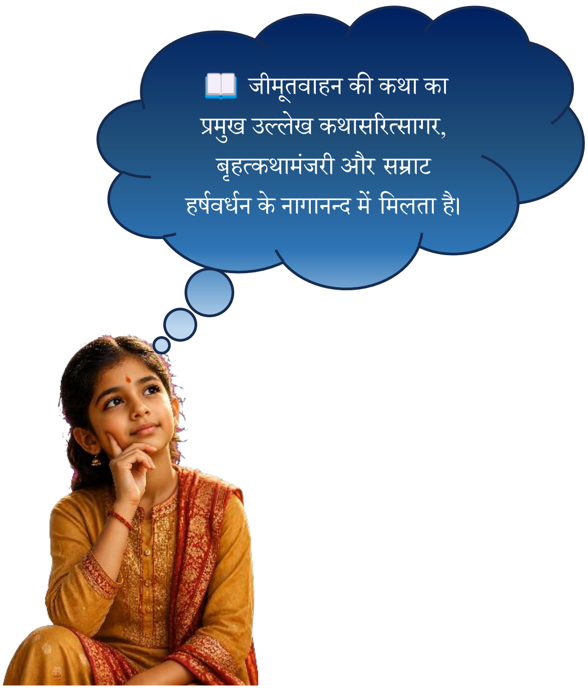


चित्र सं. 2.1

जितिया व्रत से संबंधित कथाओं में **जीमूतवाहन की कथा** सर्वाधिक प्राचीन एवं व्यापक रूप से स्वीकृत मानी जाती है। इस कथा का प्रमुख स्रोत **सोमदेव** द्वारा रचित ***कथासरित्सागर*** है, जो भारतीय कथा-साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस कथा में त्याग, करुणा, परोपकार, अहिंसा तथा लोकमंगल जैसे भारतीय जीवन-मूल्यों का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है। यही कारण है कि यह कथा

केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि भारतीय नैतिक एवं दार्शनिक चिंतन की भी महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति मानी जाती है।

कथानुसार जीमूतवाहन एक धर्मनिष्ठ, दयालु और परोपकारी राजकुमार थे। राजसुख और वैभव का त्याग कर उन्होंने लोककल्याण एवं तपस्वी जीवन को अपनाया। एक दिन भ्रमण के दौरान उनकी भेंट एक वृद्ध नागमाता से हुई, जो विलाप कर रही थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि गरुड़ के साथ हुए एक प्राचीन समझौते के अनुसार प्रतिदिन नागवंश से एक नाग को गरुड़ के भोजन के लिए भेजा जाता था। उस दिन वृद्धा के इकलौते पुत्र **शंखचूड़** की बारी थी। पुत्र-वियोग की पीड़ा से व्याकुल उस माता का करुण विलाप सुनकर जीमूतवाहन का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने यह निश्चय किया कि एक निर्दोष युवक के प्राण बचाने के लिए वे स्वयं उसके स्थान पर गरुड़ के समक्ष प्रस्तुत होंगे। उन्होंने शंखचूड़ को उसकी माता के पास लौट जाने के लिए कहा और स्वयं बलिदान-शिला पर बैठ गए। गरुड़ ने उन्हें नाग समझकर आक्रमण किया, किंतु जीमूतवाहन बिना किसी भय या प्रतिरोध के यह सब सहते रहे। जब गरुड़ को यह ज्ञात हुआ कि उसके सामने बैठा व्यक्ति कोई नाग नहीं, बल्कि एक मानव राजकुमार है जिसने दूसरे के प्राणों की रक्षा के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया है, तो वह आश्चर्यचकित और भाव-विह्वल हो गया। जीमूतवाहन के अद्वितीय त्याग और करुणा से प्रभावित होकर गरुड़ ने उन्हें जीवनदान दिया तथा भविष्य में नागों का वध न करने का संकल्प लिया। इस प्रकार नागवंश को भय और विनाश से मुक्ति मिली। यह कथा भारतीय संस्कृति में त्याग और परोपकार की सर्वोच्च अभिव्यक्ति मानी जाती है। जीमूतवाहन ने अपने परिवार या अपने राज्य के लिए नहीं, बल्कि एक अपरिचित माता के पुत्र की रक्षा के लिए अपने प्राण अर्पित करने का निर्णय लिया। यही भाव भारतीय संस्कृति के **'लोकमंगल'**,**'करुणा'** और **'परोपकार'** के आदर्शों को साकार करता है। यही कारण है कि जीवित्पुत्रिका (जितिया) व्रत में इस कथा का विशेष महत्व है। यह कथा मातृत्व को केवल जैविक संबंध तक सीमित नहीं रखती, बल्कि प्रत्येक जीवन की रक्षा, दूसरों के दुःख के प्रति संवेदनशीलता और समाज के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व का संदेश देती है। इस दृष्टि से जीमूतवाहन की कथा जितिया व्रत के दार्शनिक आधार की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति है।



2.3 चील और सियारिन की लोककथा:



चित्र सं. 2.2

जितिया व्रत से संबंधित लोकपरंपराओं में **चील और सियारिन (चिल्हो-सियार)** की कथा अत्यंत लोकप्रिय है। यह कथा विशेष रूप से बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में व्रत के अवसर पर सुनाई जाती है। यद्यपि इसका उल्लेख किसी प्राचीन संस्कृत ग्रंथ में नहीं मिलता, फिर भी लोकजीवन में यह कथा जितिया व्रत की नैतिक एवं सांस्कृतिक शिक्षाओं का महत्वपूर्ण माध्यम मानी जाती है। लोककथा के अनुसार एक **चील** और एक **सियारिन** में गहरी मित्रता थी। दोनों ने संतान के कल्याण एवं दीर्घायु के लिए जीवित्पुत्रिका (जितिया) व्रत करने का संकल्प लिया। व्रत के नियमों के अनुसार उन्हें पूरे दिन और रात्रि तक कठोर निर्जला उपवास रखना था। चील ने पूरे विश्वास, धैर्य और आत्मसंयम के साथ व्रत के सभी नियमों का पालन किया। दूसरी ओर सियारिन भूख और प्यास को सहन नहीं कर सकी। रात्रि के समय उसने चोरी-छिपे भोजन कर लिया और फिर किसी को बताए बिना पुनः व्रत करने का दिखावा करने लगी। कुछ समय बाद दोनों की संतानों के जीवन में भिन्न परिणाम दिखाई दिए। लोकविश्वास के अनुसार चील की संतान स्वस्थ, सुरक्षित और दीर्घायु रही, जबकि सियारिन की संतान अनेक कष्टों और विपत्तियों का सामना करती रही। तब सियारिन को अपनी भूल का बोध हुआ कि व्रत की सफलता केवल बाहरी अनुष्ठानों में नहीं, बल्कि सत्यनिष्ठा, आत्मसंयम और नियमों के ईमानदारीपूर्वक पालन में निहित है। यह कथा किसी चमत्कार का वर्णन करने के लिए नहीं कही जाती, बल्कि व्रत के नैतिक पक्ष को स्पष्ट करने के लिए सुनाई जाती है। इसमें चील अनुशासन, धैर्य, निष्ठा और मातृत्व के आदर्श का प्रतीक है, जबकि सियारिन मानवीय दुर्बलता, अधैर्य और नियमों की उपेक्षा का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार यह लोककथा व्रतधारियों को यह संदेश देती है कि धार्मिक अनुष्ठान का वास्तविक महत्व बाहरी प्रदर्शन में नहीं, बल्कि सत्य, आत्मसंयम, निष्ठा और नैतिक आचरण में निहित है। यही कारण है कि जितिया व्रत के अवसर पर इस कथा का श्रवण केवल एक लोकपरंपरा नहीं, बल्कि मातृत्व, अनुशासन, धैर्य और नैतिक उत्तरदायित्व की शिक्षा देने का प्रभावी माध्यम माना जाता है।

2.4 महाभारत से संबंधित जितिया की लोकपरंपरा:



चित्र सं. 2.3

जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत से संबंधित एक अन्य कथा महाभारत के उत्तरकालीन प्रसंगों से जुड़ी हुई है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि **महाभारत के मूल पाठ में "जीवित्पुत्रिका व्रत" अथवा "जितिया व्रत" का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता।** यह कथा लोकश्रुति (Oral Tradition) के माध्यम से विकसित हुई, जिसने महाभारत की घटनाओं को मातृत्व और संतान-सुरक्षा की लोकआस्था के साथ जोड़कर जीवित्पुत्रिका व्रत की सांस्कृतिक व्याख्या प्रस्तुत की। लोकमान्यता के अनुसार महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद द्रोणाचार्य के पुत्र **अश्वत्थामा** ने प्रतिशोधवश पांडव वंश का अंत करने के उद्देश्य से **ब्रह्मास्त्र** का प्रयोग किया। उस समय अभिमन्यु की पत्नी **उत्तरा** गर्भवती थीं और उनके गर्भ में पांडव वंश के अंतिम उत्तराधिकारी **परीक्षित** थे। ब्रह्मास्त्र के प्रभाव से गर्भस्थ शिशु का जीवन संकट में पड़ गया। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी दिव्य शक्ति से उत्तरा के गर्भ में स्थित बालक की रक्षा की और उसे पुनः जीवन प्रदान किया। इस प्रकार पांडव वंश का उत्तराधिकारी जीवित बच गया और आगे चलकर वही राजा परीक्षित के रूप में प्रतिष्ठित हुए। लोकपरंपरा में इसी घटना को **"जीवित पुत्र"** की अवधारणा का प्रतीक माना गया। धीरे-धीरे यह विश्वास विकसित हुआ कि जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से गर्भस्थ परीक्षित को जीवन प्राप्त हुआ, उसी प्रकार माताएँ भी अपनी संतान की रक्षा, दीर्घायु और मंगल की कामना से जीवित्पुत्रिका व्रत का पालन करती हैं। इसी लोकविश्वास के आधार पर इस व्रत को **"जीवित्पुत्रिका"** अथवा **"जितिया"** नाम से संबोधित किया जाने लगा। यद्यपि यह कथा महाभारत के मूल ग्रंथ में जीवित्पुत्रिका व्रत की स्थापना का प्रत्यक्ष आधार प्रस्तुत नहीं करती, फिर भी भारतीय लोकसंस्कृति ने इसे मातृत्व, संतान-सुरक्षा, ईश्वर में आस्था और जीवन की निरंतरता के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार यह कथा शास्त्रीय परंपरा और लोकपरंपरा के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ महाकाव्य की घटनाएँ समय के साथ लोकजीवन में नए सांस्कृतिक अर्थ ग्रहण करती चली गईं।

जीवित्पुत्रिका (जितिया) व्रत से संबंधित **जीमूतवाहन की कथा**, **चील-सियारिन की लोककथा** तथा **महाभारत-आधारित जीवित्पुत्रिका प्रसंग** अलग-अलग ऐतिहासिक, पौराणिक एवं लोकपरंपरागत स्रोतों से संबंधित हैं, परंतु तीनों का मूल उद्देश्य समान जीवन-मूल्यों की स्थापना करना है। जीमूतवाहन की कथा करुणा, परोपकार, आत्मत्याग और लोकमंगल का आदर्श प्रस्तुत करती है; चील-सियारिन की लोककथा सत्यनिष्ठा, आत्मसंयम, अनुशासन तथा व्रत के प्रति निष्ठा का संदेश देती है; जबकि महाभारत से संबंधित लोकपरंपरा मातृत्व, ईश्वर में आस्था, संतान-सुरक्षा और जीवन की निरंतरता के महत्व को रेखांकित करती है।

💡 **रोचक तथ्य:**

महाभारत विश्व का सबसे विशाल महाकाव्य है, जिसका आकार यूनानी महाकाव्यों *इलियड* और *ओडिसी* के संयुक्त आकार से भी कई गुना अधिक माना जाता है।

अध्याय 3

क्षेत्रीय सीमित प्रसार और कारक



एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥

-(श्रीमद्भगवद्गीता 4.2)

"इस प्रकार यह ज्ञान परंपरा के माध्यम से राजर्षियों द्वारा प्राप्त और जाना गया; किन्तु काल के दीर्घ प्रभाव से यह परंपरा इस संसार में लुप्तप्राय हो गई, हे परंतप (अर्जुन)।"

भावार्थः

"भारतीय ज्ञान और सांस्कृतिक परंपराएँ गुरु-शिष्य तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही हैं। जब समय के साथ उनका क्षय होने लगता है, तब उनके संरक्षण और पुनर्जीवन का प्रयास आवश्यक हो जाता है।"

3.1 भूमिका:

भारतीय लोकसंस्कृति में अनेक ऐसे व्रत एवं पर्व हैं, जो समय के साथ अपनी क्षेत्रीय सीमाओं को पार कर राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित हो गए। इसके विपरीत, **जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत** आज भी मुख्यतः बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों की सांस्कृतिक पहचान के रूप में विद्यमान है। यह स्थिति स्वाभाविक रूप से एक महत्वपूर्ण शोध प्रश्न को जन्म देती है कि जब मातृत्व, संतान-सुरक्षा एवं संतान-कल्याण की अवधारणा सम्पूर्ण भारत में समान रूप से विद्यमान है, तब जितिया व्रत का सशक्त एवं निरंतर प्रचलन केवल इसी भौगोलिक क्षेत्र तक क्यों सीमित रहा। प्रस्तुत अध्याय इसी प्रश्न का बहुआयामी विश्लेषण करता है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि जितिया व्रत का सीमित क्षेत्रीय प्रसार केवल धार्मिक आस्था का परिणाम नहीं है, बल्कि इसके पीछे गंगा के मैदानी भूभाग की भौगोलिक अनुकूलता, पारंपरिक कृषि व्यवस्था, व्रतोपयोगी सामग्रियों की स्थानीय उपलब्धता, भोजपुरी, मगही, मैथिली एवं अन्य लोकभाषाओं में विकसित कथा-परंपराएँ, लोकगीतों की मौखिक विरासत तथा जीमूतवाहन से जुड़ी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्मृतियाँ समान रूप से उत्तरदायी रही हैं। इस प्रकार जितिया व्रत केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि क्षेत्रीय भूगोल, लोकसंस्कृति, भाषा, इतिहास और सामुदायिक स्मृति के समन्वय से विकसित भारतीय सांस्कृतिक विरासत का एक विशिष्ट उदाहरण है, जिसकी निरंतरता अनेक परस्पर जुड़े सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा संरक्षित रही है।

3.2 भौगोलिक कारक, प्राकृतिक संसाधन एवं जितिया व्रत की पारंपरिक सामग्री:



चित्र सं. 3.1

जितिया व्रत का मुख्य प्रसार बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में पाया जाता है। यह केवल धार्मिक परंपरा का परिणाम नहीं हैं, बल्कि इन क्षेत्रों की विशिष्ट भौगोलिक संरचना, कृषि-आधारित जीवनशैली,तथा प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता से भी गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। भारतीय लोकसंस्कृति में अधिकांश व्रत और पर्व स्थानीय पर्यावरण के अनुरूप विकसित हुए हैं। यही कारण है कि प्रत्येक क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी, कृषि व्यवस्था तथा जैव-विविधता वहाँ की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। जितिया व्रत इसका एक सशक्त उदाहरण है। बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्र गंगा एवं उसकी सहायक नदियों द्वारा निर्मित अत्यंत उपजाऊ जलोढ़ मैदान हैं। यहाँ की मिट्टी कृषि के लिए अत्यधिक अनुकूल है, जिसके कारण वर्षा ऋतु के पश्चात अनेक प्रकार की मौसमी सब्जियाँ, कंद-मूल, अनाज तथा औषधीय गुणों वाले पौधे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। यही प्राकृतिक समृद्धि जितिया व्रत की पारंपरिक खाद्य-संस्कृति का आधार बनती है। आश्विन कृष्ण पक्ष में मनाए जाने वाले इस व्रत के समय खेतों में रागी (मड़ुआ), ओल (सूरन), अरबी, मूली, बैंगन, कद्दू, झिंगनी (तोरई),

खीरा, शकरकंद तथा विभिन्न प्रकार के साग सहज रूप से उपलब्ध होते हैं। इन स्थानीय कृषि उत्पादों का उपयोग केवल भोजन के रूप में नहीं, बल्कि व्रत की सांस्कृतिक पहचान के रूप में भी किया जाता है। यह व्यवस्था भारतीय **पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान (Traditional Ecological Knowledge-TEK)** का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें धार्मिक परंपराएँ स्थानीय पर्यावरण, कृषि चक्र तथा प्राकृतिक संसाधनों के साथ सामंजस्य स्थापित करती हैं। विशेष रूप से **नहाय-खाय** तथा **सरगही** की परंपरा स्थानीय कृषि व्यवस्था से गहराई से जुड़ी हुई है। व्रत से पूर्व महिलाएँ मड़ुआ के आटे से बने व्यंजन, विभिन्न मौसमी सब्जियाँ तथा पारंपरिक भोजन तैयार करती हैं और स्वयं भोजन करने के साथ-साथ अपनी संतानों को भी प्रेमपूर्वक भोजन कराती हैं। यह केवल धार्मिक तैयारी नहीं, बल्कि कृषि, पोषण और मातृत्व के बीच स्थापित भारतीय लोकज्ञान का उदाहरण है। इन खाद्य पदार्थों का चयन संयोगवश नहीं हुआ है, बल्कि वे स्थानीय उपलब्धता, ऋतु-अनुकूलता तथा पारंपरिक स्वास्थ्य-ज्ञान पर आधारित हैं। **मड़ुआ (रागी)** इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। यह कम जल में उगने वाली, जलवायु परिवर्तन के प्रति अपेक्षाकृत सहनशील तथा अत्यधिक पौष्टिक फसल है। इसी महत्त्व को स्वीकार करते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने **वर्ष 2023 को "अंतरराष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष (International Year of Millets)"** घोषित किया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकपरंपराओं में सदियों से प्रयुक्त मोटे अनाज आज भी पोषण, खाद्य सुरक्षा तथा टिकाऊ कृषि **(Sustainable Agriculture)** की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक हैं।

इसी प्रकार पूजा में प्रयुक्त **कुश**, **दूब**, **जीतिया धागा**, **धान**, **पान**, **सुपारी**, **नारियल**, **केला**, **अक्षत** तथा अन्य प्राकृतिक सामग्री भी स्थानीय पर्यावरण से प्राप्त होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जितिया व्रत की अनुष्ठानिक संरचना कृत्रिम या बाहरी संसाधनों पर निर्भर न होकर स्थानीय जैव-संसाधनों पर आधारित है। यही कारण है कि यह व्रत पर्यावरण के साथ सह-अस्तित्व (Coexistence) तथा स्थानीय संसाधनों के संतुलित उपयोग की भारतीय परंपरा को भी अभिव्यक्त करता है। पारंपरिक सामग्रियों का सांस्कृतिक महत्व भी अत्यंत व्यापक है। **मड़ुआ** धैर्य, सहनशीलता और जीवन-शक्ति का प्रतीक माना जाता है; **ओल (सूरन)** तथा अन्य कंद-मूल धरती की उर्वरता, पोषण और समृद्धि का प्रतिनिधित्व करते हैं; **दूब** दीर्घायु एवं जीवन की निरंतरता का प्रतीक है; **कुश** पवित्रता और आध्यात्मिक शुद्धि का द्योतक है; जबकि **जीतिया धागा** मातृत्व, संकल्प और संतान की मंगलकामना का प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार व्रत में प्रयुक्त प्रत्येक सामग्री केवल अनुष्ठानिक वस्तु नहीं, बल्कि प्रकृति, संस्कृति और जीवन-दर्शन के समन्वय का प्रतीक है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि जितिया व्रत का क्षेत्रीय स्वरूप केवल धार्मिक कारणों से निर्धारित नहीं हुआ, बल्कि उसकी जड़ें उस भूभाग की कृषि प्रणाली, प्राकृतिक संसाधनों, ऋतुचक्र और लोकजीवन में गहराई से समाहित हैं। यही कारण है कि जहाँ ये भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ विद्यमान रहीं, वहीं यह व्रत अधिक सशक्त रूप से विकसित और संरक्षित हुआ। इस दृष्टि से जितिया व्रत भारतीय लोकसंस्कृति का ऐसा उदाहरण है, जिसमें **भूगोल, पर्यावरण, कृषि, पोषण, मातृत्व और धार्मिक आस्था** एक-दूसरे के पूरक बनकर एक समन्वित सांस्कृतिक परंपरा का निर्माण करते हैं।

3.3 भाषाई निरंतरता, लोकगीत एवं लोकस्मृति:



चित्र सं. 3.2

जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत की दीर्घकालिक निरंतरता का आधार केवल इसकी व्रत-विधि नहीं, बल्कि भाषा, लोकसाहित्य, सामूहिक स्मृति तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचरित सांस्कृतिक अनुभव हैं। किसी भी लोकपर्व का अस्तित्व तभी तक बना रहता है जब तक वह समाज की बोली, पारिवारिक व्यवहार, लोककथाओं और सामुदायिक जीवन का अभिन्न अंग बना रहता है। इसी कारण जितिया व्रत का सशक्त एवं निरंतर प्रचलन मुख्यतः बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों तक सीमित रहा, जहाँ भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका, बज्जिका तथा स्थानीय नेपाली बोलियों ने इसे केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक उत्तराधिकार (Cultural Transmission) का आधार भी बनाया। इन भाषाओं ने व्रत से जुड़े अनुभवों, कथाओं, रीति-रिवाजों और मातृत्व की संवेदनाओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखा, जिसके कारण यह परंपरा सामाजिक जीवन में निरंतर बनी रही। भाषा केवल संवाद का साधन नहीं होती, बल्कि वह किसी समाज की **सांस्कृतिक स्मृति (Cultural Memory)** का भी आधार होती है। सांस्कृतिक चिंतक **Jan Assmann** के अनुसार किसी सभ्यता की पहचान केवल उसके लिखित इतिहास से निर्मित नहीं होती, बल्कि उन कथाओं, प्रतीकों, उत्सवों और सामूहिक व्यवहारों से निर्मित होती है जिन्हें समाज निरंतर दोहराता रहता है। जितिया व्रत इसी जीवित सांस्कृतिक स्मृति का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ प्रत्येक वर्ष कथा-श्रवण, लोकगीत, सामूहिक सहभागिता और पारिवारिक संवाद के माध्यम से मातृत्व, संरक्षण, आत्मसंयम और उत्तरदायित्व जैसे मूल्य पुनः स्थापित होते हैं। इसी प्रकार समाजशास्त्री **Maurice Halbwachs** ने अपनी **Collective Memory Theory** में स्पष्ट किया है कि स्मृतियाँ केवल व्यक्तियों के भीतर सुरक्षित नहीं रहतीं, बल्कि परिवार, समुदाय और सामाजिक व्यवहार के माध्यम से निरंतर पुनर्निर्मित होती रहती हैं। जितिया व्रत में दादी से माँ और माँ से पुत्री तक कथा, गीत और व्रत-विधि का हस्तांतरण इसी सामूहिक स्मृति का जीवंत उदाहरण है। यहाँ ज्ञान का संचार किसी औपचारिक शिक्षा प्रणाली के माध्यम से नहीं, बल्कि पारिवारिक सहभागिता, सामूहिक अनुभव और लोकभाषाओं के माध्यम से होता है। कगीत इस सांस्कृतिक निरंतरता के सबसे प्रभावशाली माध्यम हैं। इनमें केवल व्रत की प्रक्रिया का वर्णन नहीं होता, बल्कि माँ

मैथिली आठवीं अनुसूची में शामिल, जबकि भोजपुरी और मगही अब भी प्रतीक्षारत हैं।



की ममता, संतान की मंगलकामना, कृषि-जीवन, ऋतु परिवर्तन, पारिवारिक आत्मीयता तथा स्त्री-अनुभवों की संवेदनशील अभिव्यक्ति भी मिलती है। भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित एक लोकगीत की पंक्तियाँ इस भाव को व्यक्त करती हैं-

"जितिया के बरतिया रखलीं हो जीउतिया,
ललना के लम्बी उमिरिया हो।
निर्जल रहब हम मइया,
सदा सुखी रहस ललनवा हो॥"

इसी प्रकार मिथिला क्षेत्र में गाया जाने वाला एक लोकगीत मातृत्व की भावनाओं को अत्यंत मार्मिक रूप से व्यक्त करता है
"जीउतिया व्रत करै छी हम,
पुत्रक मंगल कामना।
दीर्घ आयु, सुख-समृद्धि भेटय,
ई छै हमर साधना॥"

इन लोकगीतों में प्रयुक्त भाषा केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि स्थानीय समाज की जीवन-दृष्टि, पारिवारिक संरचना और सामुदायिक अनुभवों का भी दर्पण है। यही कारण है कि जितिया के गीत केवल गाए नहीं जाते, बल्कि उनके माध्यम से मातृत्व, त्याग, करुणा, धैर्य और पारिवारिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्य अगली पीढ़ियों तक पहुँचते हैं। इस प्रकार लोकगीत **Emotional Archive** (भावनात्मक अभिलेख) तथा **Living Tradition** (जीवित परंपरा) दोनों का कार्य करते हैं। लोकस्मृति की दृष्टि से भी जितिया व्रत अत्यंत समृद्ध है। **जीमूतवाहन की कथा**, **महाभारत से संबंधित जीवित्पुत्रिका की लोकपरंपरा** तथा **चील–सियारिन की लोककथा** समय के साथ विभिन्न भाषाई क्षेत्रों में अनेक रूपों में विकसित हुईं, किन्तु उनका मूल संदेश-जीवन की रक्षा, मातृत्व, करुणा, आत्मसंयम और सामाजिक उत्तरदायित्व-अपरिवर्तित रहा। यही विशेषता लोकपरंपराओं को स्थायित्व प्रदान करती है। प्रत्येक पीढ़ी इन कथाओं को अपने सामाजिक संदर्भों के अनुरूप पुनः व्याख्यायित करती है, किन्तु उनके मूल जीवन-मूल्यों को अक्षुण्ण बनाए रखती है। इसी संदर्भ में **UNESCO** द्वारा प्रतिपादित **अमूर्त सांस्कृतिक विरासत (Intangible Cultural Heritage)** की अवधारणा उल्लेखनीय है, जिसके अनुसार लोकभाषाएँ, मौखिक परंपराएँ, लोकगीत, सामाजिक व्यवहार तथा पारंपरिक ज्ञान किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक पहचान के मूल आधार होते हैं। इस दृष्टि से जितिया व्रत केवल एक लोकपर्व नहीं, बल्कि पूर्वी भारत की भाषाई विरासत, स्त्री-केंद्रित लोकज्ञान और सामूहिक स्मृति का जीवंत दस्तावेज़ है। वर्तमान समय में तीव्र शहरीकरण, प्रवासन, बदलती पारिवारिक संरचना तथा डिजिटल संस्कृति ने अनेक लोकभाषाओं और मौखिक परंपराओं के समक्ष नई चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। इसके बावजूद जितिया व्रत आज भी अपने मूल सांस्कृतिक क्षेत्र में जीवंत है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इसकी निरंतरता किसी संस्थागत व्यवस्था से नहीं, बल्कि परिवार, भाषा, लोकगीत, सामुदायिक सहभागिता और सांस्कृतिक स्मृति के सतत प्रवाह से बनी हुई है। यही भाषाई निरंतरता और लोकस्मृति जितिया व्रत को केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के बीच एक सशक्त सांस्कृतिक सेतु के रूप में स्थापित करती है।

3.4 जीमूतवाहन, नामकरण एवं ऐतिहासिक विकासक्रम:



चित्र सं. 3.3

जितिया व्रत के सीमित क्षेत्रीय प्रसार को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक विकासक्रम एवं नामकरण की प्रक्रिया का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। किसी भी लोकपर्व का वर्तमान स्वरूप एक ही समय में निर्मित नहीं होता बल्कि वह दीर्घकालीन सामाजिक अनुभवों,भाषाई परिवर्तनों ,सांस्कृतिक पुनर्व्याख्या तथा लोकस्मृतियों के परिणामस्वरूप विकसित होता है। जितिया व्रत भी इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया का उदाहरण है, जिसमें शास्त्रीय आख्यान, लोकभाषाएँ तथा सामुदायिक स्मृतियाँ परस्पर मिलकर एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान का निर्माण करती हैं। इस व्रत की कथात्मक पृष्ठभूमि का प्रमुख आधार **सोमदेव भट्ट** द्वारा रचित *कथासरित्सागर* में वर्णित **जीमूतवाहन** की कथा मानी जाती है। जीमूतवाहन भारतीय साहित्य में ऐसे आदर्श लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह किए बिना नागवंश की रक्षा के लिए स्वयं को गरुड़ के समक्ष समर्पित कर दिया। यह प्रसंग केवल वीरता का नहीं, बल्कि करुणा, परोपकार, सह-अस्तित्व और जीवन-संरक्षण जैसे मानवीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। यही कारण है कि जीमूतवाहन का व्यक्तित्व आगे चलकर लोकसमाज में त्याग और संरक्षण के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया तथा पूर्वी भारत के अनेक क्षेत्रों में मातृत्व और संतान-सुरक्षा की लोकभावना के साथ उनका संबंध स्थापित हुआ। इतिहास की दृष्टि से यह भी महत्त्वपूर्ण है कि लोकसमाज ने जीमूतवाहन की कथा को यथावत् ग्रहण नहीं किया, बल्कि अपनी सामाजिक आवश्यकताओं और सांस्कृतिक अनुभवों के अनुरूप उसका पुनर्सृजन किया। सांस्कृतिक अध्ययन में इस प्रक्रिया को **Localization (स्थानीयकरण)** कहा जाता है। इसी प्रक्रिया के कारण जीमूतवाहन केवल संस्कृत साहित्य के पात्र नहीं रहे, बल्कि लोकगीतों, व्रत-कथाओं और ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग बन गए। आज भी बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में प्रचलित लोकगीतों में **"जिउतवाहन देवता"** का उल्लेख मिलता है, जो यह संकेत करता है कि साहित्यिक आख्यान धीरे-धीरे लोकस्मृति में रूपांतरित होकर सामाजिक जीवन का हिस्सा बन गया। नामकरण की प्रक्रिया भी इस विकासक्रम का महत्वपूर्ण पक्ष है। संस्कृत में इस व्रत का मूल नाम **"जीवित्पुत्रिका"** है, जिसका आशय संतान के जीवन, सुरक्षा और दीर्घायु की कामना से है। समय के साथ जब यह व्रत लोकभाषाओं के माध्यम से व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचा, तब इसके उच्चारण में स्वाभाविक परिवर्तन होने लगे। भोजपुरी और मगही में यह **"जिउतिया"**, मैथिली में **"जीउतिया"** तथा आगे चलकर सामान्य बोलचाल में **"जितिया"** के रूप में प्रचलित हो गया। इसी प्रकार अनेक लोकगीतों में **"जीमूतवाहन"** का उच्चारण भी **"जिउतवाहन"** के रूप में मिलता है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह परिवर्तन पूर्णतः स्वाभाविक है, क्योंकि लोकभाषाएँ जटिल संस्कृत शब्दों को स्थानीय ध्वन्यात्मक संरचना के अनुरूप सरल बना देती हैं। इस प्रकार

"जीवित्पुत्रिका" से "जितिया" तक की यात्रा केवल शब्द-परिवर्तन नहीं, बल्कि भाषा और समाज के परस्पर संबंधों का भी प्रमाण है।

इस भाषिक परिवर्तन को **ऐतिहासिक भाषाविज्ञान (Historical Linguistics)** तथा **नामविज्ञान (Onomastics)** के संदर्भ में भी समझा जा सकता है। किसी भी सांस्कृतिक परंपरा का नाम समय, स्थान और भाषा के प्रभाव से परिवर्तित होता रहता है, किंतु उसका मूल आशय सुरक्षित रहता है। जितिया व्रत का नामकरण भी इसी प्रक्रिया का परिणाम है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लोकभाषाओं ने केवल इस व्रत के नाम को सरल नहीं बनाया, बल्कि उसके प्रसार और सामाजिक स्वीकार्यता में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन सभी तथ्यों के आधार पर यह संभावना भी व्यक्त की जा सकती है कि जितिया व्रत का प्रारंभिक विकास पूर्वी भारत, विशेषकर बिहार तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में हुआ होगा। इसके समर्थन में कोई प्रत्यक्ष ऐतिहासिक अभिलेख उपलब्ध नहीं है, इसलिए इसे अंतिम निष्कर्ष नहीं कहा जा सकता; किंतु गंगा के मैदानी भूभाग की अनुकूल परिस्थितियाँ, स्थानीय भाषाओं में विकसित नामकरण, जीमूतवाहन से संबंधित लोकस्मृतियाँ तथा क्षेत्रीय लोकगीत इस संभावना को पर्याप्त बल प्रदान करते हैं। इसलिए जितिया व्रत का ऐतिहासिक विकासक्रम किसी एक घटना का परिणाम नहीं, बल्कि भूगोल, भाषा, लोकसाहित्य, सामुदायिक स्मृति और सांस्कृतिक अनुकूलन की दीर्घकालीन प्रक्रिया का प्रतिफल है।

💡 **रोचक तथ्य:**

गंगा नदी बेसिन भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 26% भाग घेरता है,फिर भी यह देश की लगभग 43% आबादी का जीवन-आधार है

अध्याय 4

मातृत्व, करुणा और जीवन-मूल्यों का दार्शनिक विमर्श



सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

भावार्थ:

"समस्त प्राणी सुखी हों, सभी रोग एवं दुःखों से मुक्त रहें, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कल्याण, मंगल और समृद्धि का वास हो तथा कोई भी दुःख, पीड़ा या विपत्ति का भागी न बने। यही भारतीय ज्ञान परंपरा की सार्वभौमिक करुणा, लोकमंगल और सहअस्तित्व की भावना है।"

4.1 परिचय:

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में मातृत्व को केवल जैविक संबंध के रूप में नहीं, बल्कि करुणा, त्याग, संरक्षण, आत्मसंयम तथा नैतिक उत्तरदायित्व के सर्वोच्च आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इन्हीं जीवन-मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति **जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत** में परिलक्षित होती है, जो मुख्यतः बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में संतान की दीर्घायु, सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं समृद्धि की कामना के साथ श्रद्धापूर्वक मनाया जाता है।जितिया व्रत भारतीय लोकसंस्कृति, मातृत्व-दर्शन और जीवन-मूल्यों की समृद्ध परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। कथासरित्सागर में वर्णित जीमूतवाहन की कथा इसके नैतिक एवं मानवीय आधार को सुदृढ़ करती है, जबकि व्रत से जुड़े अनुष्ठान, लोकविश्वास और सांस्कृतिक परंपराएँ भारतीय समाज में मातृत्व, पारिवारिक उत्तरदायित्व तथा सामुदायिक सहयोग की भावना को सशक्त बनाती हैं। इसके साथ ही व्रत में निहित आत्मसंयम, करुणा, संरक्षण, सह-अस्तित्व तथा प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता जैसे मूल्य भारतीय ज्ञान परंपरा की व्यापक दृष्टि को अभिव्यक्त करते हैं। वर्तमान समय में बदलती पारिवारिक संरचना, मातृत्व की परिवर्तित अवधारणा, मानसिक स्वास्थ्य, घटती प्रजनन दर, एकल परिवारों की बढ़ती प्रवृत्ति तथा माता–संतान संबंधों में उभरती नई चुनौतियों के संदर्भ में जितिया व्रत के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक एवं पर्यावरणीय आयाम विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। यह लोकपर्व केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं, सांस्कृतिक निरंतरता, पारिवारिक मूल्यों तथा उत्तरदायी सामाजिक जीवन का जीवंत दर्शन प्रस्तुत करता है। जितिया व्रत भारतीय लोकजीवन में निहित उन शाश्वत जीवन-मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज और प्रकृति के मध्य संतुलित, संवेदनशील एवं उत्तरदायी संबंधों की स्थापना में आज भी समान रूप से प्रेरणास्रोत हैं।

4.2 भारतीय मातृत्व का वैचारिक विमर्श:



चित्र सं.4.1

भारतीय ज्ञान परंपरा में मातृत्व को केवल संतान-जन्म की प्राकृतिक क्षमता या पारिवारिक भूमिका तक सीमित नहीं माना गया है, बल्कि उसे करुणा, त्याग, संरक्षण, आत्मसंयम, संस्कार तथा नैतिक उत्तरदायित्व की सर्वोच्च अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। भारतीय चिंतन के अनुसार माता केवल जीवन का आरंभ करने वाली नहीं, बल्कि जीवन को दिशा, उद्देश्य और मूल्य प्रदान करने वाली प्रथम गुरु एवं प्रथम संरक्षक है। बालक के व्यक्तित्व, चरित्र और नैतिक चेतना का प्रारम्भिक निर्माण मातृत्व की गोद में ही होता है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में मातृत्व को सृष्टि के संरक्षण, मानवीय संवेदनाओं और लोकमंगल की आधारशिला के रूप में सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् का प्रसिद्ध महावाक्य **"मातृदेवो भव।"** मातृत्व की इसी सर्वोच्च प्रतिष्ठा का उद्घोष करता है। इसका तात्पर्य है कि माता के प्रति सम्मान, सेवा और कृतज्ञता केवल पारिवारिक दायित्व नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक कर्तव्य भी हैं। माता ही वह प्रथम माध्यम है जिसके द्वारा बालक प्रेम, करुणा, अनुशासन, सह-अस्तित्व और मानवीय मूल्यों का अनुभव करता है। भारतीय साहित्य में भी मातृत्व की इसी महिमा का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। **रामचरितमानस** में माता कौशल्या श्रीराम से कहती हैं-

"केवल पितु आयसु ताता, तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।"
यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में माता का स्थान केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि नैतिक एवं धर्मसम्मत अधिकार से भी संपन्न माना गया है। यहाँ मातृत्व को परिवार की नैतिक धुरी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जिसके निर्णय और स्नेह दोनों समान रूप से आदरणीय हैं। इसी भावना को **मनुस्मृति** और भी अधिक स्पष्ट करती है-

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

अर्थात् दस उपाध्यायों से एक आचार्य श्रेष्ठ है, सौ आचार्यों से एक पिता श्रेष्ठ है, किंतु सहस्र पिताओं से भी माता का गौरव अधिक माना गया है। यह श्लोक माता को केवल परिवार का सदस्य नहीं, बल्कि ज्ञान, संस्कार, चरित्र-निर्माण और नैतिक चेतना के सर्वोच्च स्रोत के रूप में स्थापित करता है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में मातृत्व की यह अवधारणा **"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"** के आदर्श में और अधिक व्यापक स्वरूप ग्रहण करती है। यहाँ जननी और जन्मभूमि दोनों को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहा गया है। इसका तात्पर्य केवल भावनात्मक श्रद्धा नहीं, बल्कि उस स्रोत के प्रति कृतज्ञता, संरक्षण और उत्तरदायित्व का भाव है, जिससे जीवन प्राप्त हुआ और जिसका संरक्षण मानव का नैतिक दायित्व है। इस प्रकार मातृत्व की अवधारणा व्यक्ति और परिवार की सीमाओं से आगे बढ़कर राष्ट्र, संस्कृति और सभ्यता की चेतना से जुड़ जाती है। इन दार्शनिक, धार्मिक और साहित्यिक आधारों से स्पष्ट होता है कि भारतीय चिंतन में मातृत्व केवल वात्सल्य या भावनात्मक संबंध का प्रतीक नहीं है। यह धर्म, करुणा, त्याग, आत्मसंयम, संरक्षण, उत्तरदायित्व और लोकमंगल पर आधारित एक समग्र जीवन-दृष्टि है, जो व्यक्ति और समाज दोनों के नैतिक विकास का आधार बनती है। इसी व्यापक दार्शनिक आधार पर **जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत** का स्वरूप निर्मित होता है। यह व्रत केवल संतान की दीर्घायु की कामना करने वाला धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि भारतीय मातृत्व-दर्शन की जीवंत सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। इसमें माता का उपवास, आत्मसंयम, तप, प्रार्थना और समर्पण यह संदेश देते हैं कि सच्चा मातृत्व केवल स्नेह की अनुभूति नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व, त्याग, धैर्य, नैतिक प्रतिबद्धता और लोककल्याण की भावना से अनुप्राणित जीवन-दृष्टि है। इसी कारण जितिया व्रत भारतीय संस्कृति में मातृत्व के आध्यात्मिक, नैतिक और मानवीय आदर्शों का एक सशक्त प्रतीक माना जाता है।

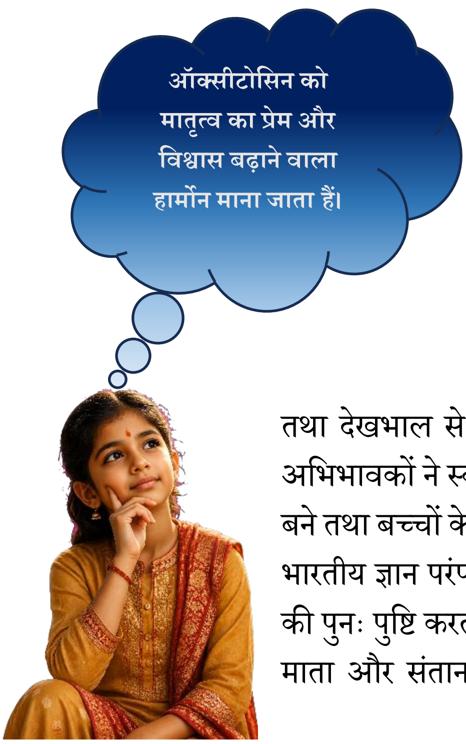
4.3 समकालीन सामाजिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में मातृत्व–संतान संबंध:


चित्र सं. 4.2

समकालीन समाज तीव्र सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है। इन परिवर्तनों का प्रभाव केवल जीवनशैली तक सीमित नहीं है, बल्कि पारिवारिक संबंधों, विशेष रूप से माता–संतान संबंधों की प्रकृति पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आज के समय में बच्चों का पालन-पोषण केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि उनके मानसिक स्वास्थ्य, भावनात्मक संतुलन, नैतिक विकास तथा सामाजिक व्यवहार के

निर्माण से भी गहराई से जुड़ गया है। ऐसे परिवर्तित सामाजिक परिदृश्य में मातृत्व की भूमिका पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक और उत्तरदायित्वपूर्ण हो गई है। **UNICEF** की ***Child and Adolescent Mental Health Service Mapping: India (2024)*** के अनुसार भारत में लगभग **43.6 करोड़** बच्चे एवं किशोर निवास करते हैं। यह रिपोर्ट संकेत करती है कि आधुनिक जीवनशैली, बढ़ती प्रतिस्पर्धा, सामाजिक परिवर्तन तथा बदलते पारिवारिक परिवेश के कारण बच्चों और किशोरों में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ निरंतर बढ़ रही हैं। रिपोर्ट इस तथ्य पर विशेष बल देती है कि माता-पिता का भावनात्मक सहयोग बच्चों के मानसिक विकास और मनोवैज्ञानिक सुरक्षा का सबसे महत्वपूर्ण संरक्षणकारी कारक (Protective Factor) है। परिवार में स्नेहपूर्ण संवाद, विश्वास, अपनत्व और भावनात्मक सुरक्षा का वातावरण बच्चों में आत्मविश्वास, मानसिक संतुलन तथा सकारात्मक व्यक्तित्व के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में मातृत्व की भूमिका केवल शारीरिक संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि संतान को भावनात्मक सुरक्षा, मानसिक स्थिरता और नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करना भी उसका एक महत्त्वपूर्ण दायित्व बन चुका है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने इस सत्य को बहुत पहले ही स्वीकार कर लिया था। **"मातृदेवो भव"** (तैत्तिरीय उपनिषद्) का महावाक्य माता को जीवन की प्रथम गुरु, प्रथम संरक्षक तथा संस्कारों की प्रथम संवाहिका के रूप में प्रतिष्ठित करता है। भारतीय चिंतन के अनुसार बालक के व्यक्तित्व, चरित्र तथा नैतिक चेतना का प्रारम्भिक निर्माण माता के स्नेह, अनुशासन और संस्कारों के माध्यम से होता है। इसी दार्शनिक दृष्टि का सांस्कृतिक रूप जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत में दिखाई देता है, जहाँ माता केवल संतान की दीर्घायु और सुरक्षा की कामना ही नहीं करती, बल्कि उसके शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक कल्याण का भी संकल्प ग्रहण करती है। इस दृष्टि से आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों के संदर्भ में जितिया व्रत भावनात्मक सुरक्षा, मातृ-संरक्षण तथा पारिवारिक उत्तरदायित्व के सांस्कृतिक महत्त्व को पुनः स्थापित करता है।

UNICEF की इसी रिपोर्ट में पालन-पोषण संबंधी दिशानिर्देशों के अंतर्गत यह भी उल्लेख किया गया है कि वर्तमान समय में अत्यधिक स्क्रीन-समय (Screen Time) तथा डिजिटल उपकरणों पर बढ़ती निर्भरता बच्चों के सामाजिक, भावनात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है। डिजिटल माध्यमों के अत्यधिक उपयोग से बच्चों और अभिभावकों के बीच प्रत्यक्ष संवाद में कमी आती है, जिससे भावनात्मक निकटता तथा पारिवारिक सहभागिता भी प्रभावित होती है। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक तकनीक ने माता–संतान संबंधों की प्रकृति और व्यवहारिक स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन उत्पन्न किया है। परिणामस्वरूप मातृत्व की भूमिका अब केवल देखभाल तक सीमित न रहकर डिजिटल अनुशासन, संतुलित तकनीकी उपयोग तथा भावनात्मक मार्गदर्शन तक विस्तृत हो गई है। UNICEF के कार्यक्रमों से प्राप्त निष्कर्ष यह भी दर्शाते हैं कि जिन परिवारों को बच्चों के साथ संवाद, खेल, सकारात्मक पालन-पोषण तथा देखभाल से संबंधित नियमित मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, उनमें लगभग **81 प्रतिशत** अभिभावकों ने स्वीकार किया कि वे बच्चों के विकास को लेकर अधिक आत्मविश्वासी बने तथा बच्चों के स्क्रीन-समय को अधिक प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सके। यह निष्कर्ष भारतीय ज्ञान परंपरा में संस्कार, संवाद और पारिवारिक सहभागिता को दिए गए महत्त्व की पुनः पुष्टि करता है। भारतीय लोकपरंपराओं में जितिया व्रत जैसे पारिवारिक अनुष्ठान माता और संतान के मध्य प्रत्यक्ष संवाद, सहभागिता, आत्मीयता तथा भावनात्मक



निकटता को सुदृढ़ करते हैं। सामूहिक रूप से सम्पन्न होने वाले ऐसे सांस्कृतिक अनुष्ठान परिवार के सदस्यों को एक-दूसरे के साथ समय बिताने, अनुभव साझा करने तथा पीढ़ियों के बीच संस्कारों और जीवन-मूल्यों के आदान-प्रदान का अवसर प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से जितिया व्रत आधुनिक डिजिटल जीवन में मानवीय संबंधों को पुनर्जीवित करने तथा पारिवारिक संवाद को सशक्त बनाने वाला एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक माध्यम भी माना जा सकता है।

4.4 जितिया व्रत के परिप्रेक्ष्य में मातृत्व का मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक विमर्श:



चित्र सं. 4.3

भारतीय जीवन-दर्शन में मातृत्व को करुणा, त्याग, वात्सल्य तथा संतान-सुरक्षा के सर्वोच्च आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। भारतीय संस्कृति में मातृत्व केवल एक पारिवारिक उत्तरदायित्व नहीं, बल्कि नैतिकता, संरक्षण, आत्मसमर्पण और लोकमंगल से जुड़ी जीवन-दृष्टि का प्रतीक माना जाता है। इन्हीं आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत जैसी लोकपरंपराओं में दिखाई देती है, जहाँ माता अपनी संतान की दीर्घायु, उत्तम स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं समग्र कल्याण की कामना से कठोर निर्जला व्रत का पालन करती है। इस दृष्टि से जितिया व्रत केवल धार्मिक आस्था का अनुष्ठान नहीं है, बल्कि मातृत्व के मनोवैज्ञानिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों की एक जीवंत अभिव्यक्ति भी है। यदि जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत को आधुनिक मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह मातृत्व के भावनात्मक एवं नैतिक पक्षों की एक सशक्त सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में उभरता है। मनोवैज्ञानिक **John Bowlby** द्वारा प्रतिपादित **Attachment Theory** के अनुसार माता और शिशु के मध्य स्थापित प्रारम्भिक भावनात्मक संबंध (Attachment) बच्चे के व्यक्तित्व, भावनात्मक सुरक्षा, आत्मविश्वास तथा सामाजिक विकास की आधारशिला होता है इस सिद्धांत के अनुसार माता द्वारा प्रदान किया गया स्नेह, सुरक्षा तथा संवेदनात्मक उपलब्धता (Emotional Availability) बच्चे के स्वस्थ मानसिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। प्रारम्भिक जीवन में माता और संतान के मध्य निर्मित यह भावनात्मक संबंध ही आगे चलकर बच्चे की आत्मविश्वासपूर्ण व्यक्तित्व-रचना, सामाजिक संबंधों तथा भावनात्मक संतुलन को प्रभावित करता है। इसी संदर्भ में जितिया व्रत का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि माता अपनी संतान के स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं दीर्घायु की मंगलकामना करते हुए उपवास, आत्मसंयम और प्रार्थना का पालन करती है। यह केवल धार्मिक आस्था का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि संतान के प्रति गहरे भावनात्मक लगाव, संरक्षण, उत्तरदायित्व तथा निःस्वार्थ समर्पण की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी है। इस प्रकार Attachment Theory और भारतीय मातृत्व-दर्शन के मध्य वैचारिक साम्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि दोनों ही संतान के समग्र विकास में माता की भावनात्मक उपस्थिति, सुरक्षा तथा संरक्षण को केंद्रीय स्थान प्रदान करते हैं।

जितिया व्रत मुख्यतः बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा नेपाल के तराई क्षेत्रों में व्यापक श्रद्धा, आस्था और सामुदायिक सहभागिता के साथ मनाया जाता है। इसके बावजूद समकालीन समय में इन्हीं क्षेत्रों से कुछ ऐसी घटनाएँ भी सामने आई हैं, जिन्होंने मातृत्व के नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक आयामों पर गंभीर प्रश्न खड़े किए हैं। उदाहरणस्वरूप,

जनवरी 2026 में बिहार के औरंगाबाद जिले में एक महिला द्वारा कथित रूप से अपने दो बच्चों की हत्या का मामला सामने आया, जिसमें पुलिस जाँच के अनुसार घरेलू तनाव और पारिवारिक विवाद प्रमुख कारण बताए गए। इसी प्रकार जुलाई 2026 में बिहार के झंझारपुर (मधुबनी) में एक न्यायालय ने एक महिला और उसके प्रेमी को उसके दो बच्चों की हत्या के मामले में मृत्युदंड सुनाया। इन घटनाओं का आशय यह नहीं है कि पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो गए हैं, बल्कि वे इस प्रश्न को अधिक गंभीरता से हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं कि जिन क्षेत्रों में मातृत्व, त्याग, करुणा और संतान-सुरक्षा जैसे आदर्शों का सांस्कृतिक रूप से निरंतर उत्सव मनाया जाता है, वहाँ बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ, मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ, पारिवारिक तनाव तथा नैतिक संकट मातृत्व के व्यवहारिक स्वरूप को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं। यह स्थिति केवल व्यक्तिगत व्यवहार का प्रश्न नहीं है, बल्कि व्यापक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का भी संकेत देती है। इसी परिप्रेक्ष्य में जितिया व्रत की समकालीन प्रासंगिकता और अधिक स्पष्ट होकर सामने आती है। यह व्रत भारतीय मातृत्व-दर्शन, करुणा, उत्तरदायित्व, आत्मसंयम तथा सामुदायिक सहयोग जैसे जीवन-मूल्यों को केवल उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन-पद्धति के रूप में प्रस्तुत करता है। वर्तमान समय में जब पारिवारिक तनाव, मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, सामाजिक अलगाव तथा मूल्य-संकट निरंतर बढ़ रहे हैं, तब जितिया व्रत में निहित जीवन-मूल्यों का पुनर्पाठ विशेष रूप से आवश्यक प्रतीत होता है। यह परंपरा स्मरण कराती है कि मातृत्व का वास्तविक आधार केवल जैविक संबंध नहीं, बल्कि संवेदनशीलता, संरक्षण, नैतिक उत्तरदायित्व और जीवनपर्यंत समर्पण की भावना है।

4.5 बदलती मातृत्व अवधारणा और समकालीन दृष्टिकोण:


चित्र सं.4.4

समकालीन समाज में मातृत्व की अवधारणा भी महत्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। जहाँ पारंपरिक भारतीय समाज में मातृत्व को स्त्री जीवन का एक महत्वपूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक दायित्व माना जाता था, वहीं वर्तमान समय में शिक्षा के प्रसार, आर्थिक आत्मनिर्भरता, शहरीकरण, करियर संबंधी आकांक्षाओं तथा बदलती जीवनशैली के कारण मातृत्व संबंधी निर्णय अधिक व्यक्तिगत, परिस्थितिनिष्ठ और विचारपरक होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप मातृत्व अब केवल सामाजिक अपेक्षाओं का विषय नहीं रह गया है, बल्कि व्यक्तिगत आकांक्षाओं, आर्थिक परिस्थितियों, पारिवारिक संरचना तथा जीवन की प्राथमिकताओं से गहराई से प्रभावित होने वाला निर्णय बन गया है। इस परिवर्तन का प्रभाव भारत की कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate-TFR) में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5, 2019–21) के अनुसार भारत की कुल प्रजनन दर घटकर **1.9** हो गई है, जो प्रतिस्थापन स्तर (Replacement Level) **2.1** से भी कम है। इसी प्रवृत्ति की पुष्टि संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (UNFPA) की **State of World Population Report 2025** भी करती है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि भारत में प्रजनन व्यवहार (Fertility Behaviour) तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। रिपोर्ट के अनुसार अधिकांश महिलाएँ एवं दम्पति आज भी संतान चाहते हैं, किन्तु आर्थिक असुरक्षा, रोजगार की अनिश्चितता,

बच्चों के पालन-पोषण की बढ़ती लागत, उपयुक्त आवास की कमी, कार्य-जीवन संतुलन(Work-Life Balance) की चुनौतियाँ तथा लैंगिक असमानताएँ उनके प्रजनन संबंधी निर्णयों को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ महिलाएँ एवं दम्पति स्वेच्छा से संतानहीन (Childfree by Choice) जीवन को भी स्वीकार कर रहे हैं। इन परिस्थितियों से स्पष्ट होता है कि आधुनिक समय में मातृत्व केवल सांस्कृतिक परंपरा अथवा पारिवारिक अपेक्षाओं तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक और व्यक्तिगत परिस्थितियों से प्रभावित एक जटिल एवं बहुआयामी निर्णय का रूप ग्रहण कर चुका है। इन बदलती परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति में निहित मातृत्व-दर्शन तथा जितिया व्रत जैसे सांस्कृतिक अनुष्ठानों की समकालीन प्रासंगिकता और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। यह आवश्यक है कि इन परंपराओं का पुनर्मूल्यांकन केवल धार्मिक आस्था के आधार पर न होकर उनके नैतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयामों के संदर्भ में भी किया जाए। ऐसा करने से यह समझने में सहायता मिलती है कि भारतीय परंपराओं में निहित जीवन-मूल्य आज के परिवर्तित सामाजिक परिवेश में मातृत्व को किस प्रकार अधिक उत्तरदायी, संवेदनशील और मूल्यपरक बना सकते हैं।

भारत में मातृत्व में विलंब (Delayed Motherhood) की प्रवृत्ति भी निरंतर बढ़ रही है। उच्च शिक्षा, देर से विवाह, रोजगार को प्राथमिकता, आर्थिक स्थिरता की आकांक्षा तथा व्यक्तिगत जीवन-लक्ष्यों के कारण अनेक महिलाएँ पूर्व की अपेक्षा अधिक आयु में मातृत्व को अपनाने लगी हैं। इसके साथ ही महिलाओं की प्रजनन संबंधी निर्णयों में भागीदारी और स्वायत्तता भी बढ़ी है। यह परिवर्तन महिला सशक्तिकरण, शिक्षा और आत्मनिर्भरता का सकारात्मक संकेत है, किन्तु इसके साथ मातृत्व और करियर के मध्य संतुलन स्थापित करना आधुनिक समाज की एक महत्त्वपूर्ण चुनौती बनकर उभरा है। इस संदर्भ में मातृत्व केवल जैविक क्षमता का प्रश्न नहीं रह जाता, बल्कि भावनात्मक तैयारी, पारिवारिक सहयोग, सामाजिक संरचना और आर्थिक स्थिरता से जुड़ा एक व्यापक जीवन-निर्णय बन जाता है। इन समकालीन परिवर्तनों के बीच जितिया व्रत की प्रासंगिकता और अधिक स्पष्ट होकर सामने आती है। यह व्रत मातृत्व को केवल संतान-जन्म की प्रक्रिया तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे करुणा, उत्तरदायित्व, आत्मसंयम, संरक्षण तथा मूल्यपरक पालन-पोषण की सांस्कृतिक चेतना के रूप में प्रतिष्ठित करता है। भारतीय दर्शन का **"मातृदेवो भव"** सिद्धांत माता को केवल जन्मदात्री के रूप में नहीं, बल्कि प्रथम गुरु, संस्कारों की संवाहक तथा जीवन-मूल्यों की आधारशिला के रूप में स्थापित करता है। इसी दार्शनिक दृष्टि का व्यावहारिक स्वरूप जितिया व्रत में दिखाई देता है, जहाँ मातृत्व का वास्तविक अर्थ केवल संतान को जन्म देना नहीं, बल्कि उसके शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सांस्कृतिक तथा भावनात्मक विकास के प्रति आजीवन उत्तरदायित्व का निर्वहन करना है। अतः ऐसे समय में जब मातृत्व संबंधी निर्णय व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक परिस्थितियों और बदलती जीवनशैली से प्रभावित हो रहे हैं, जितिया व्रत भारतीय मातृत्व-दर्शन को समकालीन संदर्भों में पुनः समझने का अवसर प्रदान करता है। यह लोकपर्व स्मरण कराता है कि मातृत्व का वास्तविक मूल्य केवल जन्म देने में नहीं, बल्कि संस्कार देने, संरक्षण प्रदान करने, नैतिक मार्गदर्शन करने और उत्तरदायी नागरिक के निर्माण में निहित है।

💡 **रोचक तथ्य:**

मार्कण्डेय पुराण **में मदालसा को ऐसी माता के रूप में वर्णित किया गया है, जिन्होंने अपने पुत्रों को आत्मज्ञान, विवेक और धर्मपूर्ण जीवन के संस्कार प्रदान किए।**

अध्याय 5

जितिया व्रत का पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य



द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः।
सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भावार्थः

आकाश, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ तथा समस्त सृष्टि में संतुलन, शांति और कल्याण बना रहे। प्रकृति का प्रत्येक तत्व अपने स्वाभाविक स्वरूप में सुरक्षित रहे, ताकि समस्त प्राणियों का जीवन सुखमय एवं समृद्ध हो।

5.1 परिचय:

प्रकृति और मानव का संबंध भारतीय ज्ञान परंपरा में सदैव परस्पर निर्भरता, संतुलन और सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर आधारित रहा है। भारतीय संस्कृति में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति तथा समस्त जीव-जगत को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन के अभिन्न अंग और संरक्षण योग्य धरोहर के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी कारण भारतीय लोकजीवन में विकसित अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ प्रकृति के प्रति सम्मान, प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग तथा पर्यावरण संरक्षण की चेतना को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करती हैं। वर्तमान समय में विश्व जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के क्षरण, प्राकृतिक संसाधनों के अति-दोहन, प्लास्टिक प्रदूषण तथा असतत उपभोग जैसी गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। इन परिस्थितियों में यह अनुभव किया जा रहा है कि केवल वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपाय पर्यावरणीय संकटों का स्थायी समाधान प्रदान नहीं कर सकते। इसलिए संयुक्त राष्ट्र, जैव विविधता पर अभिसमय (Convention on Biological Diversity-CBD), UNESCO तथा FAO जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ स्थानीय समुदायों के पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान (Traditional Ecological Knowledge) तथा सांस्कृतिक परंपराओं को पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की रणनीतियों का महत्त्वपूर्ण आधार मानती हैं। इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत का पर्यावरणीय पक्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यद्यपि यह व्रत मुख्यतः मातृत्व, संतान के कल्याण और पारिवारिक मंगलकामना से जुड़ा लोकपर्व है, तथापि इसके अनुष्ठानों, पूजन सामग्री, स्थानीय कृषि उत्पादों तथा सामुदायिक परंपराओं में प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व, स्थानीय जैव विविधता का संरक्षण, पारंपरिक कृषि ज्ञान तथा सतत जीवनशैली के अनेक आयाम निहित हैं। इस दृष्टि से जितिया व्रत केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं, बल्कि भारतीय लोकपरंपरा में निहित पर्यावरणीय चेतना और सतत विकास के सांस्कृतिक मूल्यों को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी है.

5.2 जितिया व्रत की पर्यावरणीय प्रासंगिकता:



चित्र सं. 5.1

जितिया व्रत में प्रयुक्त अधिकांश पूजन सामग्री-जैसे कुश, दूब, विभिन्न प्रकार के स्थानीय साग, कंद-मूल, मौसमी फल, मिट्टी के पात्र तथा प्राकृतिक रेशों से निर्मित सामग्री-स्थानीय जैव विविधता पर आधारित होती है। इसी प्रकार झिंगनी, नोनी (पोई), ओल (सूरन), अरबी, शकरकंद, मूली, बैंगन, कद्दू, खीरा, कुशी (कुसिया)कैराव तथा अन्य स्थानीय एवं मौसमी कृषि उत्पादों का उपयोग इस व्रत की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इससे स्थानीय कृषि प्रणाली, देशी फसलों तथा पारंपरिक खाद्य विविधता को संरक्षण मिलता है और बाहरी संसाधनों पर निर्भरता अपेक्षाकृत कम रहती है। खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार स्थानीय तथा मौसमी खाद्य पदार्थों का उपयोग न केवल पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करता है, बल्कि

खाद्य परिवहन (Food Miles) को कम करके कार्बन उत्सर्जन में भी कमी लाने में सहायक होता है। साथ ही स्थानीय कृषि उत्पादों की माँग बढ़ने से देशी बीजों, पारंपरिक कृषि पद्धतियों तथा कृषि जैव विविधता (Agrobiodiversity) के संरक्षण को भी प्रोत्साहन मिलता है। इस दृष्टि से जितिया व्रत केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि स्थानीय कृषि, जैव विविधता और पारंपरिक खाद्य संस्कृति के संरक्षण का एक प्रभावी सांस्कृतिक माध्यम भी है। इसके अतिरिक्त यह व्रत स्थानीय वनस्पतियों की पहचान, मौसमी कृषि चक्र, औषधीय पौधों के पारंपरिक ज्ञान तथा प्रकृति के प्रति सम्मान की भावना को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने का कार्य करता है। यही प्रक्रिया पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान (Traditional Ecological Knowledge) के संरक्षण का आधार बनती है। इस प्रकार जितिया व्रत भारतीय लोकपरंपरा के माध्यम से पर्यावरणीय चेतना, प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व तथा सतत जीवनशैली के मूल्यों को निरंतर जीवित रखता है। यद्यपि आधुनिक समय में इस व्रत के स्वरूप में भी अनेक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। प्लास्टिक की सजावट, रासायनिक रंगों का प्रयोग, कृत्रिम पूजन सामग्री, डिस्पोज़ेबल वस्तुओं का बढ़ता उपयोग तथा अत्यधिक व्यावसायीकरण इसकी पारंपरिक पर्यावरण-अनुकूल प्रकृति को प्रभावित कर रहे हैं। यदि इन प्रवृत्तियों पर समय रहते नियंत्रण नहीं किया गया, तो लोकपरंपराओं में निहित पर्यावरणीय चेतना और उनका संरक्षणकारी स्वरूप धीरे-धीरे कमजोर पड़ सकता है। इसलिए आवश्यक है कि जितिया व्रत की मूल परंपराओं-जैसे प्राकृतिक एवं जैव-अवक्रमणीय सामग्री का उपयोग, स्थानीय एवं मौसमी कृषि उत्पादों को प्राथमिकता, देशी फसलों का संरक्षण तथा सामुदायिक सहभागिता-को पुनर्जीवित किया जाए। इससे न केवल लोकपरंपरा की मौलिकता सुरक्षित रहेगी, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास तथा स्थानीय जैव विविधता के संवर्धन को भी प्रोत्साहन मिलेगा। अतः यह कहा जा सकता है कि जितिया व्रत प्रत्यक्ष रूप से कोई पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रम नहीं है, फिर भी इसमें निहित पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान, स्थानीय जैव विविधता का संरक्षण, मौसमी एवं स्थानीय खाद्य प्रणाली, प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग तथा प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व की भावना वर्तमान पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। यदि इन सांस्कृतिक मूल्यों को समकालीन पर्यावरणीय नीतियों, जन-जागरूकता अभियानों तथा सतत विकास की योजनाओं से जोड़ा जाए, तो जितिया व्रत भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत पर्यावरणीय उत्तरदायित्व, सामुदायिक सहभागिता और सतत विकास का एक प्रभावी सांस्कृतिक मॉडल प्रस्तुत कर सकता है।

5.3 वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियाँ, पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान और जितिया व्रत:



चित्र सं. 5.2

समकालीन विश्व अभूतपूर्व पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन,जैव विविधता का क्षरण, प्राकृतिक संसाधनों का अति-दोहन, प्लास्टिक प्रदूषण तथा असतत उपभोग (Unsustainable Consumption) जैसी समस्याएँ केवल पर्यावरण तक सीमित नहीं हैं, बल्कि मानव स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, कृषि व्यवस्था और सामाजिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित कर रही हैं। इन चुनौतियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल आधुनिक विज्ञान और

तकनीकी समाधान पर्यावरणीय संकटों का पूर्ण समाधान नहीं कर सकते। इसके लिए स्थानीय समुदायों के अनुभव, पारंपरिक ज्ञान और प्रकृति के साथ संतुलित जीवन-पद्धति को भी समान रूप से महत्त्व देना आवश्यक है। इसी दृष्टिकोण को संयुक्त राष्ट्र (United Nations), UNESCO तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने भी स्वीकार किया है। इन संस्थाओं के अनुसार पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास (Sustainable Development) की प्रभावी रणनीतियाँ तभी सफल हो सकती हैं, जब उनमें स्थानीय समुदायों के **पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान (Traditional Ecological Knowledge-TEK)** और सांस्कृतिक परंपराओं को समुचित स्थान दिया जाए। यही कारण है कि **जैव विविधता पर अभिसमय (Convention on Biological Diversity-CBD)** के अनुच्छेद 8(j) में स्थानीय एवं आदिवासी समुदायों के ज्ञान, नवाचार और पारंपरिक जीवन-पद्धतियों को जैव विविधता संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है। UNESCO ने भी यह स्वीकार किया है कि स्थानीय सांस्कृतिक परंपराएँ केवल सांस्कृतिक विरासत नहीं हैं, बल्कि वे पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता के संवर्धन तथा सतत विकास के लिए व्यावहारिक ज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

रोचक तथ्य:

विश्व की लगभग 80% जैव विविधता का संरक्षण स्थानीय समुदायों द्वारा किया जाता है।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्ययन के प्रथम भाग से यह स्पष्ट होता है कि जितिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत का वर्तमान स्वरूप किसी एक ऐतिहासिक घटना या धार्मिक मान्यता का परिणाम नहीं है, बल्कि यह दीर्घकालीन सांस्कृतिक विकास, भाषाई परिवर्तन, लोकस्मृति तथा क्षेत्रीय सामाजिक जीवन के समन्वय से निर्मित हुआ है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि सोमदेव भट्ट कृत *कथासरित्सागर* में वर्णित जीमूतवाहन की कथा ने इस व्रत के वैचारिक आधार को सुदृढ़ किया, जबकि समय के साथ लोकसमाज ने इस आख्यान को अपने सामाजिक अनुभवों और जीवन-मूल्यों के अनुरूप पुनर्व्याख्यायित कर मातृत्व एवं संतान-सुरक्षा के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप संस्कृत का "जीवित्पुत्रिका" शब्द लोकभाषाओं में परिवर्तित होकर "जिउतिया", "जीउतिया" तथा अंततः "जितिया" के रूप में व्यापक रूप से प्रचलित हुआ। अध्ययन यह भी इंगित करता है कि इस व्रत का सीमित क्षेत्रीय प्रसार केवल सांस्कृतिक संयोग नहीं है। गंगा के मैदानी भूभाग की भौगोलिक अनुकूलता, कृषि-आधारित जीवन, स्थानीय वनस्पतियों की उपलब्धता, पारंपरिक खाद्य सामग्री, भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका और बज्जिका जैसी लोकभाषाओं की निरंतरता तथा लोकगीतों और मौखिक परंपराओं ने इसके संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन सभी तत्वों ने मिलकर जितिया व्रत को केवल एक लोकाचार नहीं रहने दिया, बल्कि पूर्वी भारत की सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक स्मृति और लोकज्ञान का जीवंत उदाहरण बना दिया। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि जितिया व्रत का विकास इतिहास, भूगोल, भाषा, लोकसाहित्य और सामुदायिक अनुभवों की संयुक्त प्रक्रिया का परिणाम है, जिसने इसे भारतीय लोकजीवन में एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया।

जितिया व्रत का महत्व केवल संतान की दीर्घायु की कामना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय मातृत्व-दर्शन, करुणा, आत्मसंयम, संरक्षण, नैतिक उत्तरदायित्व तथा लोकमंगल जैसे सार्वभौमिक जीवन-मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति है। भारतीय ज्ञान परंपरा में मातृत्व को प्रथम गुरु, प्रथम संरक्षक और मूल्य-निर्माण की आधारशिला माना गया है तथा जितिया व्रत इन्हीं आदर्शों को व्यवहारिक रूप में अभिव्यक्त करता है। जीमूतवाहन की कथा, लोककथाएँ, लोकगीत तथा व्रत से जुड़े व्यवहार व्यक्ति को त्याग, सह-अस्तित्व, संवेदनशीलता और उत्तरदायी पारिवारिक जीवन की प्रेरणा प्रदान करते हैं। समकालीन संदर्भ में यह अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि वर्तमान समाज बदलती पारिवारिक संरचना, घटती प्रजनन दर (TFR), मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों, एकल परिवारों की बढ़ती प्रवृत्ति तथा माता–संतान संबंधों में आए परिवर्तनों का सामना कर रहा है। ऐसी परिस्थितियों में जितिया व्रत आधुनिक समस्याओं का प्रत्यक्ष समाधान प्रस्तुत नहीं करता, किंतु इसमें निहित जीवन-दृष्टि समाज को मानवीय संवेदनाओं, पारिवारिक उत्तरदायित्व, सामाजिक सहयोग और प्रकृति के प्रति संतुलित दृष्टिकोण की ओर प्रेरित करती है। इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि अब तक जितिया व्रत पर अधिकांश अध्ययन अनुष्ठानिक एवं पौराणिक पक्षों तक सीमित रहे हैं, जबकि इसके दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, महिला अध्ययन, पर्यावरणीय तथा भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़े आयामों पर व्यापक शोध की आवश्यकता है। इसलिए भविष्य में अंतःविषयक (Interdisciplinary) दृष्टिकोण से किए जाने वाले अनुसंधान न केवल इस लोकपर्व की बहुआयामी समझ को समृद्ध करेंगे, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक ज्ञान परंपरा के समकालीन महत्व को भी नए परिप्रेक्ष्य में स्थापित करेंगे

संदर्भ सूची:

ग्रंथ और लेख

1. Somadeva(1882), *Kathasaritsagara,*Patna:Bihar Rashtrabhasha Parishad,(421-465).
2. Harshavardhana (1970), *Naganand Natak*,Delhi: Motilal Banarsidas Publishing.
3. Ved Vyas (2020), *Mahabharata Volume 4,* Gorakhpur:Gitapress.
4. Manu, *Manusmriti (1900),*Meerut: Swami Press Meerut.
5. Ved Vyasa, *Garuda Purana, Gorakhpur: Gitapress.*
6. Goswami Tulsidas, *Ramcharitmanas*, Gorakhpur:Gitapress.
7. Hembrom, S. (2020). *Mission to the Tharus in Nepal*. In A. C. Harper (Ed.), *Journal of Asian Evangelical Theology*. Theological Book Trust for Asia Theological Association.
8. okharel, Churamani. *The Indigenous Tharu of Nepal: History, Heritage, and Cultural Continuity*. Nepal: Lumbini Buddhist University.
9. Sahil, A. K. (2025). Divine feasts: Food offerings as expression of devotion and cultural heritage in the folk traditions of Uttar Pradesh and Bihar. In S. Pandey (Ed.), *Intellectual Resonance*. Delhi College of Arts & Commerce (University of Delhi).
10. Bowlby, J. (1969). *Attachment and Loss: Volume I. Attachment*. London: Hogarth Press.
11. International Institute for Population Sciences (IIPS), & ICF. (2022). *National Family Health Survey (NFHS-5), 2019–21: India Report*. Mumbai: IIPS.

12. United Nations Population Fund. *State of World Population 2025: The Real Fertility Crisis-The Pursuit of Reproductive Agency in a Changing World*. Edited by Ian McFarlane, United Nations Population Fund, 2025.

LINKS:

1. https://www.oneating.in/the-jitiya-fast/
2. https://www.amarujala.com/photo-gallery/spirituality/festivals/jivitputrika-vrat-2025-kab-hai-jitiya-2025-date-and-time-puja-vidhi-and-katha-2025-09-08
3. जितिया | Jitiya 2026 Date | Saturday, 3 October 2026 - BhaktiBharat.com

4. https://vajiramandravi.com/current-affairs/jivitputrika-festival/
5. https://www.clickastro.com/blog/jivitputrika-vrat/
6. https://timesofindia.indiatimes.com/city/patna/jitiya-in-patna-mothers-pray-for-well-being-of-children/articleshow/94291630.cms
7. https://blog.medihertz.com/jitiya-vrat-2025-date-significance-story-rituals/
8. https://www.moneycontrol.com/religion/jivitputrika-vrat-katha-story-of-king-jimutavahana-garuda-and-shankhachuda-naga-article-13543206.html#google_vignette
9. https://bihardarpan.blogspot.com/2008/03/jitiya-festival.html?m=1
10. https://www.cbd.int/traditional
11. https://www.unesco.org/en/articles/new-assessment-offers-options-ensure-sustainable-use
12. https://india.unfpa.org/sites/default/files/pub-pdf/2025-06/EN_SWP25_Web_Final.pdf
13. https://www.hindustantimes.com/cities/patna-news/bihar-woman-kills-two-children-after-heated-argument-with-husband-in-aurangabad-101767617774801.html
14. https://www.hindustantimes.com/cities/patna-news/bihar-woman-kills-two-children-after-heated-argument-with-husband-in-aurangabad-101767617774801.html
15. https://archive.org/details/TaittiriyaUpanishadGitaPressGorakhpur/page/n13/mode/2up
16. www.valmikiramayan.net/yuddha/sarga124/yuddhaitrans124.htm#Verse17

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः।

ममोपात्तसमस्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमात्मनः प्रीत्यर्थं, मम पुत्र-पौत्रादि-सन्तानस्य दीर्घायु, आरोग्य, सुख, समृद्धि, यश, कीर्ति तथा सर्वमङ्गलप्राप्त्यर्थं जीवित्पुत्रिका-व्रतं करिष्ये।।

लेखक का परिचय :



मैं **अनमोल भारती** हूँ। मेरा जन्म **11 जून 2006** को बिहार के जमुई जिला में हुआ। वर्तमान में मैं देव संस्कृति विश्वविद्यालय (DSVV), हरिद्वार में *इतिहास एवं भारतीय संस्कृति* विषय में स्नातक अध्ययनरत हूँ तथा ऋषिहुड विश्वविद्यालय, सोनीपत से संबद्ध शैक्षणिक एवं अनुसंधान गतिविधियों से जुड़ा हूँ।

मेरी विशेष रुचि भारतीय लोकपरंपराओं, मातृत्व अध्ययन, भारतीय दर्शन, सांस्कृतिक विरासत, पर्यावरणीय नैतिकता तथा अंतःविषयक अनुसंधान में है। इन्हीं रुचियों के परिणामस्वरूप **"जितिया व्रत: परंपरा, प्रसार और प्रासंगिकता"** मेरी प्रथम शोधपरक ई-पुस्तक के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस कृति के माध्यम से मेरा प्रयास जितिया व्रत को केवल एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में नहीं, बल्कि उसके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय आयामों के समग्र परिप्रेक्ष्य में समझना और प्रस्तुत करना है।

मैं अपने पूजनीय माता-पिता के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनके त्याग, स्नेह, नैतिक संस्कार और निरंतर प्रोत्साहन के बिना इस कृति का सृजन संभव नहीं था। उनके आशीर्वाद और विश्वास ने मुझे प्रत्येक चरण पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। मैं इस पुस्तक को श्रद्धापूर्वक उन्हें समर्पित करता हूँ।

For more information, please visit my LinkedIn profile.